शोध प्रबन्ध

गोस्वामी तुलसीदास जी महान कवि ही नही अपितु नीतिशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित एवं संस्कारो के सर्जक थे । उन्होने उस समय की शासनव्यवस्था की कमियों के साथ साथ मुस्लिम शासकों के द्वारा हिन्दू जनता के साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार को भी देखा था । उन्होंने निरीह प्रजा को अपने ऊपर किये जाने वाले अत्याचारों के विरूद्ध आवाज उठाते हुए भी देखा था । जाने अनजाने उनके मस्तिष्क पर उस विद्रोही स्वरूप धारण करती जनता के करूण क्रन्दन का असर हुआ और उसी की स्पष्ट झलक उनकी कृतियों में दिखाई देने लगी, और वही उनके मानस की रचना की प्रेरणा बनने में सहायक हुई । प्राचीन काल से ज्ञान एवं संस्कृति की अमूल्य धरोहर का संरक्षण करने वाली वैभवएवं ज्ञान दोनो ही को समान रूप से उपयोग करने वाली, प्रेम एवं सोहार्द धर्म नीति शास्त्र एवं शस्त्र सभी का समान रूप से सम्मान करने वाली, एवं ज्ञान की पराकाष्ठा तक पहुँच कर भारत को सम्पूर्ण विश्व में अग्रणी रखने वाली हिन्दू जनता को ही जब उन्होंने शारीरिक एवं मानसिक दोनो रूप से प्रताडित होते देखा तो उनका कवि हृदय मर्मान्तक पीड़ा से भर उठा ।

उस समय की जनता अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष कर रही थी परन्तु आपसी वैमनस्यव पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, कलह सभी से घिरी हुई उस अवस्था से निकलने मे असमर्थ थी ऐसे समय जब चारों ओर अंधकार था । तुलसी दास जी ने अपनी कृतियों के आलम्बनों से असहाय जनता को नवीन मार्ग प्रशस्त कर दिखाया एवं उन सभी के लिए एक पथ प्रदर्शक के कार्य को सम्पन्न किया । गोस्वामी जी ने हिन्दू प्रजा को मानसिक राजनीतिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक दासता से मुक्त करके वास्तविक स्वतंत्र जीवन की ओर आकर्षित किया एवं नवीन मार्ग की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान की ।

तुलसीदास जी ने तत्कालीन युग की, राज्यों मे होने वाली अराजकता एवं अनियमिताओं को देखा एवं परखा था राजगद्‌दी के लिए राज परिवारों में होने वाले आपसी वैमनस्य को महसूस किया था । सभी की लोलुप नजरों में एक ही आकांक्षा दिखाई देती थी सत्ता को प्राप्त करने की लिप्सा जिसके आगे खून मजहब सगाई सभी निरूत्तर थे । सबसे बड़ी वस्तु ही विलासी जीवन रह गया था । उसी अवस्था में भारतीय जनवादी राष्ट्रीय चेतना के प्रचार एवं प्रसार का स्वप्न जो तुलसी दास जी के मनस्वी जीवन का ध्येय था अपने शास्वत स्वरूप में साकार होने लगा था ।

उस समय की विदेशी शासकों के द्वारा की जाने वाली नृशंसता एवं स्वेच्छाचारिता एवं धर्म की कट्टरता का गोस्वामी तुलसीदास जी ने कड़ा विरोध किया । उन्होने उस युग में उस व्यवस्था का विरोध करते हुए भारतीय राजतंत्र की सुनिश्चित शासन व्यवस्थाकी पुनः प्रतिष्ठा करते हुए एक नये आलोक में नवीन जन जीवन के आगमन की सूचना दी थी ।

तुलसीदास जी केवल कवि ही नही थे वे तो दिव्य दृष्टि रूपी राम भक्ति से सम्पन्न द्रष्टा थे । वे अपनी भक्ति के आलोक में यह देख चुके थे कि भारत के नव निर्माण के लिए चाहे वह सामाजिक हो या धार्मिक, राजनैतिक हो या आध्यात्मिक भारत की प्राचीन अनुभूत ज्ञानसंपदा का वास्तविक व्यवहार अपेक्षित ही नही अनिवार्य है ।

वे अपने प्राचीन गौरवमय अतीत को नही भूले थे । अतीत के अनुभव तथा ज्ञान के आधार पर उन्होने भावी राष्ट्र निर्माण की योजना को साकार स्वरूप प्रदान करने का बीड़ा उठाया । वर्तमान जीवन के प्रति उनके हृदय में जो भी रूप रेखा थी उसके अनुसार ही वे प्राचीन भारत के गरिमामय अतीत को नवीन गति प्रदान करते हुए उसकी स्वाभाविक चंचलता को अखण्ड रखते हुए नवीन आकारों के साथ अपना स्वरूप प्रस्तुत करे यही उनकी दृष्टि थी ।

कहा जाता है कि परम्परायें, प्रथायें धर्म और सामाजिक संस्थाये सदैव अपनी जड़ों से जीवित रहती है जो प्रागैतिहासिक कालों की सुदूर गहराई में अंकित है । क्योंकि यदि भारत का अतीत ारतीय मस्तिष्क से मिटा दिया जाये तो वर्तमान जाति धर्म भाव और संस्कृति की अनेकता मिलेगी और सच्ची स्थायी एकता के विकास की कोई आशा नहीं रहेगी ।

इसी बात को ध्यान में रखते हुए तुलसी दास जी ने अपने ग्रंथ में सभ्यता के विकास ओर उसके इतिहास की कथा में सर्वप्रतम परिवार की कल्पना की है जिसमें मानव मानव के बीच प्रेम व सद्भावना सदाचार भाईचारे एवं एक दूसरे के मौलिक अधिकारों की रक्षाके लिए परिवार ने जो व्यवस्था की एवं जिन नियमों का प्रतिपादन किया मूल रूप से वे ही नियम आगे चलकर समाज देश एवं राष्ट्र के लिए सार्वभौमिक नियम बने ।

जिस प्रकार परिवार में प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान व्यवहार होता है उसी प्रकार देश में मानव एवं मानव के बीच अन्त नही होता है । उस प्रकार प्रत्येक मानव को ईश्वर को ओर से प्रदान किये गये मालिक अधिकारों की रक्षा राज्य, देश व राष्ट्र का प्रथम कर्तव्य होता है ।

प्रत्येक मानव स्वयं के जीवन को सुरक्षित करने के अधिकार को स्वयं क सुख की खोज के अधिकार को, स्वयं के विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अधिकार को अपनी इच्छानुसार व्यापार करने का अधिकार मानवोचित न्याय की प्राप्ति का अधिकार आदि को प्राप्त करने की आकांक्षा रहते है तभी तक जनता सरकार को सम्मान की दृष्टि से देखती है जब उसके मौलिक अधिकारों को छीना जाता है वह विद्रोह की ओर अग्रसर होने लगती है एवं सत्ता में बदलाव अथवा नवीनता लाने का प्रयास करने लगती है ।

इसी प्रकार से राज्य या राष्ट्र के सार्वभौम विकास के लिए शासन

व्यवस्था ओर राज्य प्रणाली का निर्माण होता है एवं उसमें परिवर्तन एवं परिवर्द्धन समयनानुसार होते रहते हैं यदि सुव्यवस्था न हो ओर सरकारो का निर्माण होता है तो ऐसी अवस्था में मानव के मौलिक अधिकारों पर कुठाराघात हो सकता है क्योकि मानव हृदय गर्त (हिंसा, अन्याय व पतन) की ओर अधिक शीघ्रता से बढ़ता रहता है । मनुष्य जीवन, उसकी स्वतंत्रता एवं उसका धर्म निर्वाह सभी असुरक्षित हो जाते हैं । ऐसी घोर अव्यवस्था के निवारणार्थ सरकार अथवा सुद्रढ़ शासन व्यवस्था की आवश्यकता होती है ।

गोस्वामी तुलसी दास जी के सामने प्राचीन राज्य व्यवस्था एवं संघ व्यवस्था के गुणदोष प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान थे । उन्होने स्वतंत्र शासन की जो धर्मानुकूल नियमों से आबद्ध हो उसे मान्यता दी ।

गोस्वामी तुलसी दास जी ने अपने ग्रंन्थ रामचरितमानस में दशरथ जी के राज्यत्व काल का उल्लेख किया है उन्होनें उसमें राज यसभा, पंचों, मंत्रिगणों, सचिवों सभासदों युवराज पद आदि का उचित वर्णन किया है जिसके संकेत मिलते हैं । जब राजा दशरथ जी के मन में श्री राम को युवराज बनाने का विचार आता है तो वे सर्वप्रथम अपने कुलगुरू वशिष्ठ जी के पास जाकर अपने प्रियपुत्र राम की योग्यता को सभी प्रकार से प्रमाणित करके उन्हे युवराज पद गुरू आज्ञा से प्रधान करना चाहते है, अनुमति के पश्चात् ही वे अपने उस प्रस्ताव को राज्यसभा में पंचों के समक्ष रखते है । जिससे यह स्पष्ट होता है कि उस काल में भी गुरूआज्ञा व राज्यसभा की अनुमति अनुसार से चलना राजा के लिए अनिवार्य था ।

राम या दशरथ का शासन प्रजातांत्रिक था जिसमें राजा एवं प्रजा के बीच मानवीय सम्बन्ध का महत्व था किन्तु रावण का शासन भय एवं अन्याय पर टिका हुआ था जिसमें रावण अधिनायकवादी प्रवृत्ति को ही मुख्यरूप से प्रदर्शित करता है । गोस्वामी तुलसी दास जी के मन्तव्यानुसार वह राज्य व्यवस्था श्रेष्ठ होती है । जिसमें बड़े से लेकर छोटे व्यक्ति तक सभी को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो एवं उनके

अधिकार पूरी तरह से सुरक्षित रह सके ।

इस प्रकार देखा जाये तो रावण चूंक मनमानी करते हुए दिखाया गया है एवं उसे किसी से भी परामर्श लेते हुए नही बतलाया गया है नही उनका सम्मान करते दिखलाया गया है वह एक निरंकुश की भांति रहता था । सभी मंत्रियों व सभासदों की अवहेलना करना ही उसका मन्तव्य रहता था । उसने अपने स्वयं के लिए एक घृणा और तिरस्कार का संसार बना लिया था । रावण जहाँ अपने भाई कुबेर आदि से बल पूर्वक राज्य छीन लेता है वही दुसरी ओंर राम के प्रति अगाध प्रेम व श्रद्धाके फलस्वरूप भरत अपने पता द्वारा प्रदत्त राज्य को भी अस्वीकार कर देते हैं ।

गुरू वशिष्ठ द्वारा बाध्य किये जाने पर भी उसे (राज्य को) स्वीकार नही करते है । वशिष्ठ जी कहते है कि राज्य के नियमानुसार पिता किसी भी पुत्र को अपना राज्य दे सकता है अतः तुम इस राज्य के राजा हो तुम्हे अपने राज्य धर्म का पालन करना चाहिए । इतना सब होने पर भी भरत राज्य स्वीकार नही करते हैं यही नही अपितु चरण पादुका रख कर सेवक की भांति जीवन यापन करते है ।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने तत्कालीन वैदिक राज्य प्रणाली व राज्यतंत्र की प्राचीन परम्परा का आदर्श स्वरूप अपने समक्ष रखा । उसमे लोक कल्याण एवं मानव जाति की विकासोन्नति के लिए एक मार्ग प्रदर्शित किया गया है जिसमे प्रजा का हित ही सर्वोपरि है । तुलसीदास जी ने मुस्लिम राजतंत्र के खोखलेपन को उसके भयावह स्वरूप को बहुत निकट से देखा परखा था । उनके समक्ष लाखों करोड़ों लोगों ने जुल्म सहन किये थे । उस समय जनता शासक के अत्याचारों से मुक्ति पाने के लिए प्रयत्नशील थी ऐसे में ही तुलसीदास जी ने "नाना पुराण निगमादित संमत" का आधार लेकर मानवशास्त्र एवं धर्मशास्त्र की अनुभूत प्राचीन परम्परा पर भारतीय आदर्शोन्मुख राजतंत्र की शान्त व चिरपरिचित व्यवस्था को साकार स्वरूप प्रदान

किया एवं भारत की पतनोन्मुख राष्ट्र की टूटती व्यवस्था को सयमित करने का एक सफल प्रयत्न किया ।

भारत जैसे प्राचीन देश की राज्य व्यवस्था शास्त्र संमत थी अतः उसमे प्रजा का भी सहयोग रहता था । उस काल में राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था एवं राजा भी अपनी प्रजा का पुत्रवत पालन करता था । उसका ध्येय केवल प्रजा की भलाई एवं लोकहित की चिन्तना में लगा रहता है । भारतीय राजा धर्म और अध्यात्म शक्ति का प्रतीक होता है । शारीरिक शक्ति और भौतिक वैभव के साथ साथ आध्यात्मिक सुख का संयोग भारतीय नरेशों के जीवन और शासन का चरम उद्देश्य होता है । तुलसी दास जी द्वारा चित्रित राजतंत्र प्रतिरूप रेखा है । भारतीय राज्यतंत्र के आदर्श एवं अन्य देशीय राजतंत्रीय आदर्शों मे जमीन आसमान का फर्क है । क्योकि उद्देश्य की भिन्नता से व्यवस्था से स्वभावतः अन्तर आ रही जाताहै । जहाँ पर इरानी संस्कृति वाली अरबी - फारसी व्यवस्था में शासको का लक्ष्य केवल भौतिक एवं आसुरी शक्ति और ऐश्वर्य विलास की आराधना करना उसका मनमानी उपभोग करना मात्र था । वहाँ पर भारतीय संस्कृति से प्रभावित राजा आदर्श गुणों से युक्त होकर ईश्वरत्व के सन्निकट देवत्व को प्राप्त करता है । एक का राज्य जहाँ स्वार्थपरकता कूटनीति हिंसा एवं भोग विलास तथा अहं पर आश्रित रहता है वहाँ दूसरे का परमार्थ पर स्व के त्यागपर सेवक भाव में अहिंसा पर आधारित स्थान रहता है । एक के जीवन में सुखसुविधाओं का महत्वपूर्ण रहता है तो दूसरे में सुख सुविधाओं के साथ त्याग एवं बलिदान की परमेच्छानिहित है । जहाँ भारतीय नरेशों की तुलना में विदेशी राजा मात्र शासक के रूप में दिखाई देता है ।

तुलसी दास जी ने कलियुग के वर्णन के रूप में विदेशी शासकों के वर्णन को ही प्रस्तुत कर दिया है । उस समय मुस्लिम शासकों की सामन्दवादी मनोवृत्ति एवं गलत नीतियों की वजह से गरीब एवं निरीह प्रजा चारों और से दुःखी थी उस अवस्था में प्रजा के हित के बारे में कोई भी नही सोचता था । शासकों की स्वार्थ परक

नीतियों के स्थान पर निस्वार्थता एवं परोपकारी की भावना की अपवश्यकता को ध्यान रखते हुए राजतंत्र एवं प्रजातंत्र की भावना का समन्वय कर तुलसी दास जी ने एक आदर्श राजा एवं शासन व्यवस्था की कल्पना कर उसे साकार स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया ।

यदि यह विचारा जाय कि कवि तुलसीदास जी ने उस काल उस विषम परिस्थिति में रहकर भी इतनी सुन्दर कल्पना किस प्रकार की । उन्होने एक नवीन राजनैतिक चेतना का सूत्रपात करते हुए नवीन क्रान्ति को जन्म दिया ।

उनके राम प्रजा को सम्मान व आदर देने वाले एवं अपने प्राणों से प्रिय मानने वाले है । इसी लिए उन्होने राजनैतिक क्षेत्र में सुधार, संस्कार कर क्रान्ति का सूत्रपात कर एक नवीन मार्ग प्रशस्त किया । क्योंकि उस समय तक तो राजपूतों की शासन एवं वैभव की जगह उनकी राजनैतिक स्वतंत्रता को ही लुप्त प्रायः देखा जाने लगा था।

जब सम्राट व राजा ही अपनी वीरता खो चुके थे तो जनता के वीर-वान होने का सवाल नहीं उठता था, साहित्य चूंकि समाज का ही दर्पण होता है इसलिए जब समाज में ही वीरों का अभाव हो चुका था तब कवियों के हृदयों में भी वीररस की धारा बहना बन्द हो चुकी थी । उनके हृदय में वह उत्साह वह उमंग नही थी जो प्राचीन कवियों के साहित्य में दिखाई देती थी ।

सामाजिक क्षेत्रो में भी वर्णाश्रम व्यवस्था को छिन्न भिनन किया जाने लगा था । सभी वर्ण अपने नियमों के बन्धनो को तोडने लगे थे । राजाओने अपना धर्म प्रजापालन छोड़ दिया था एवं वे रागरंग में अपनी क्षमता नष्ट कर रहे थे । चारो ओर से गरीब प्रजा ही का शोषण हो रहा था । ब्राह्मणो ने अपना धर्म छोड़कर चाटुकारिता अपना ली थी । शूद्रोने अपने सारे बन्धन को तोड कर ऊपर उठने का निश्चय कर लिया था चूकि मुसलमानों में द्विज या शूद्रो समान कोई वर्ण भेद नही था और नही उनके व्यवसाय ही उनके समाज

में स्थापित स्तर को प्रदर्शित करता था । अतः उनका रूझान मुस्लिम धर्म को ओर होने लगा था । अतः जो संघर्ष राजनीतिक धार्मिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक श्रेक्षो मे उस समय परिलक्षित हो रहा था उसके फल स्वरूप समाज की निम्न श्रेणी की ही हानि हो रही थी । फलतः जन समुदाय के उस निम्न वर्ग की सामाजिक-मानसिक तथा आध्यात्मिक खिन्नता को दूर करने के लिए कुछ ऐसे महात्माओ का आगमन हुआ जिनमे से तुलसी दास जी एक थे । उन्होने भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही राम के व्यक्तित्व की रचना की थी । उनका व्यक्तित्व मर्यादा पुरूषोत्तम का एवं जनकल्याणकारी है वे अपने साधको की मनोभावनाओ को पूरा करने वालो तो है ही वे उनके इष्टदेव तथा नरलीला भी करने वाले प्रभु है ।

वेसे रामकथा और भारतीय संस्कृति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है - उन दोनो का विकास एक दूसरे का पूरक कहा जाय तो अतिश्योक्ति नही होगी ।

रामकथा भारत वर्ष की सांस्कृतिक विचारधारा के विकास का ही दूसरा स्वरूप है । अधर्म के उपर धर्म के जय के साथ साथ नारायण की दिव्यता का जो स्वरूप दिखाई देता है उसे ही हम रामकथामान सकते है । यूंतो रामकथा बहुत ही प्राचीन है उसका उल्लेख हमें अनेको प्राचीन ग्रन्थो में मिलता है । तुलसीदास जी ने उन सभी का अध्ययन किया एवं उनका सार रूप ग्रहण किया है । परन्तु उनका उदे्श्य यहा पर अनेको रामायणों की सूची में एक ओर रामायण को सम्मिलित करना ही नही था बल्कि उनका उद्देश्य तो अपने ग्रन्थ के द्वारा जनजागरण व श्रेष्ठ संस्कारों का सिंचन करना था । उस समय की राजनैतिक अवस्था का चित्रण करते हुए तुलसीदासजी ने जनजागृति के साथ-साथ परिवारों की मानमर्यादा का पाठ भी सिखला दिया था चूंकि साहित्य में समाज एवं संस्कृति दोनो ही अभिव्यक्ति होती है अतः कवि स्वयं ही समाज एवं संस्कृति के समन्वय करने की क्षमता अपनी लेखनी में रखता है । तुलसीदास जी ने भी रामचरित मानस को दार्शनिक और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि ही नही प्रदान की

है परन्तु उन्होने उसे अपने मानस के साहसिक अभियान के निमित्ते एक नई दिशा प्रदान भी की है एवं उसके अन्तर्निहित महत्वों एवं संभावनाओं की खोज की है । उनकी रामकथा की पृष्ठभूमि में एक विशिष्ट दार्शनिक और आध्यात्मिक दृष्टि है । हम उसे अनदेखा नही कर सकते है । तुलसीदास जी ने रामचरितमानस के रूप में भारतीय जनमानस को एक अमरग्रन्थ दिया है ।

प्रस्तुत 'शोधप्रबन्ध रामचरितमानस में राजतंत्रीय सांस्कृतिक समन्वय' मेरा एक मौलिक प्रयास है । बाल्यकाल से ही सुसंस्कृत परिवार में जन्म लेने के कारण तुलसीदासजी के रामचरित मानस का आकण्ठपाठ करने से तथा कृति में आई हुई घटनाओ का मनन करने का मेरा स्वभाव रहा है । यह मानस से लगाव किस उम्र से हुआ यह याद नही है, परन्तु यह याद है कि जब भी मैंने स्व. पिताजी पू. माताजी स्व. दादाजी सभी को रामायण पाठ सस्वर करते देखा । मैंने भी पाठ करने का प्रयास किया । अखन्ड रामायण में भी पारायण करने के बाद मुझे अभूतपूर्व प्रसन्नता होती थी । मंगलवार की कथा में पूज्य श्री रामनारायणजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य जब रामायण पाठ करते हुए उन प्रसंगो का चित्रण करते तो लगता था वे सभी पात्र साकार हो रहे हैं । स्व. भाई शैलेन्द्र जी जोशी ने जब पूरी रामायण को अपने चित्रो में अंकित करने के पश्चात उन्हें मारीशस भेजा था तब भी मुझे उस लगाव की अनुभूति होती थी ।

ससुराल में भी स्व. पू. दादाससुरजी एवं स्व. ससुरजी हमेशा रामायण पाठ करते थे एवं मुझे रोज पाठ करते देखकर आशिर्वादों की वर्षा कर देते थे । बचपन में इन्दौर ''गीता जयन्ती'' पर श्री 1008 पू. श्री सीतारामशरण जी गीता भवन में श्री कुमारी सरोजबाला को लेकर आते थे, जो रामचरितमानस पर धारा प्रवाह भाषण देती थी । उनकी प्रेरणा ही मेरे इस प्रयास को साकार स्वरूप प्रदान करने में अधिक सहायक रही है । बाल्यावस्था के दृढनिश्चय का प्रतिफल आज सभी के समक्ष प3स्तुत करते हुए हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

मैंने बचपन में ही रामचरित मानस के साथ साथ वाल्मीकि रामायण व अन्य कथाओ का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन किया । कालान्तर में बी.ए. व एम.ए. की परीक्षाएँ हिन्दी साहित्य के साथ उत्तीर्ण की । उस समय भी मेरा दृढ संकल्प था कि मैं ऐसा करने के पश्चात मानस के सांस्कृतिक एवं राजनैतिक क्षेत्रो एवं मानस में वर्णित मार्मिकं प्रसंगो को लक्ष्य में रखकर एक शोध प्रस्तुत करूंगी उसी को साकार रूप में प्रस्तुत कर रही हूं । बी.ए. करन के पश्चात ग्रहस्त जीवन का निर्वाह करते हुए एम.ए. हिन्दी साहित्य में किया उसका मूल उद्‌देश्य यही था कि राम चरित मानस पर शोध प्रस्तुत करना है । ''राम चरित मानस में राजतंत्रीय सांस्कृतिक समन्वय'' विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने का बीड़ा उठाया । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कितना मौलिक है एक सहृदय अध्येयता ही जान सकता है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के माध्यम से मैंने उन विषयों पर खोज-बीन की जिनका आजतक शोध के रूप में प्रयोग नहीं हुआ यदि कुछ कार्य हुआ भी तो वह भी अधूरा है ।

मुझे पूरी आशा है, सहृदय रसिको एवं मानस के अध्येयताओ के लिए यह प्रबन्ध लाभकारी सिद्ध होगा । गोस्वामी तुलसीदास जी से महान व्यक्तित्व को केन्द्र में रख कर पिछले दो सौ वर्षो स विपुल सामग्री समीक्षा व शोध के क्षेत्र में प्रस्तुत हुई है । उसको अनुशीलन का विषय बनाना भी सामान्य कार्य नही है । पिछले तीस वर्षों से मैंने तुलसी के अध्ययन को अनेक दिशाए दी है । साहित्यकला धर्म दर्शन समाजशास्त्र और संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रो को शास्त्रीय ज्ञान के प्रकाश में मैंने तुलसीदास जी की रचनाओ को परखा है । राजनीति एवं नीतिशास्त्र की नवीनतम स्थापनाओं के आधार पर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की परीक्षा करनी चाही है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कुल नौ अध्यायों में विभाजित है ।

1. प्रथम अध्याय में पृष्ठभूमि पर बड़ी गहराई से प्रकाश डाला है।

तुलसीदास जी की पूरी रामकाव्य की परम्पराओं का उल्लेख कर संक्षिप्त वर्णन करते हुए उसमें वर्णित राजतंत्रीय सांस्कृतिक चित्रों को स्पष्ट किया गया है । इसके अन्तर्गत रामायण काव्य परम्परा एवं साहित्य एवं राजनीति व साहित्य एवं संस्कृति पर प्रकाश डालते हुए मध्यकालीन भक्ति परक साहित्य को भी राजनीति एवं सांस्कृति को केन्द्र मं रख कर एक विवेचनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है ।

इसके साथ साथ रामाश्रयी साहित्य और राजनीति तथा संस्कृति उस काल में घटित सांस्कृतिक एवं राजनैतिक स्थितियों को भी अभिव्यक्त किया गया है । इस प्रकार पृष्ठ भूमि तत्कालीन राजतंत्रीय सांस्कृतिक परिवेशों की अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया गया है ।

द्वितीय खण्ड में तत्कालीन सांस्कृतिक एवं राजनैतिक स्थितियाँ और साहित्यिक चेतना के द्वारा उस समय की राजनैतिक अवस्था का चित्रण करने का प्रयास किया गया है । तत्कालीन मुस्लिम राज्य प्रणाली एवं शासन व्यवस्था की त्रुटियों के कारण दुःखी जनता के मानस पटल पर होने वाले उद्ववेगों को अभिव्यञ्जित करने का प्रयास किया गया है । ज्ञान एवं प्रेम तथा धर्म शास्त्र एवं शास्त्र आदि सभी का उच्च ज्ञान प्राप्त करने वाली हिन्दू जनता शारीरिक एवं मानसिक दासत्व में जकड़ी हुई थी एवं मुक्ति के लिए संघर्षशील थी । ऐसे अन्धकारमय वातावरण में गोस्वामी तुलसीदास जी ने संकटग्रस्त जनता को अपनी कृतियों के माध्यम से नवीन मार्ग प्रशस्त कर नवीन चेतना का संचार किया था वे उनको नवीन जागृत अवस्था में देखना चाहते थे ।

उन्होने तत्कालीन युग की राजनैतिक सांस्कृतिक सामाजिक सभी परिस्थितियों का प्रसंगानुरूप चित्रण किया है। उन सभी सामान्य परिस्थितियों पर विजय करने जीवन यापन करने की कला को जनसामान्य के लिए सुलभ किया था । उन्होने अपनी दिव्य दृष्टि की सहायता से भारत की प्राचीन अनुभूत ज्ञान संपदा का सदुपयोग कराया एवं नवीन चेतना का संचार किया था उसी का परिचय इस अध्याय में दिया

गया है ।

तृतीस खण्ड में रामचरित मानस का सांस्कृतिक परिवेश तथा स्थापित मूल्य + धर्म + समाज + राजनीति + संस्कृति आदिका समावेश किया गया है ।

इसके अन्तर्गत मध्यकालीन काव्य रचना में तुलसीदास जी की सांस्कृतिक देन प्रबद्ध पाठको से छिपी हुई नही है । तुलसीदास जी भी इसे ही स्पष्ट करते है । कि मनुष्य की सबसे बड़ी धरोहर उसकी संस्कृति है । समाज शास्त्र के अनुसार समाज मनुष्य का एक समूह है । कई समूहों का एक समुदाय है और इस समुदाय या समाज के कई प्रतिमान या सामाजिक मूल्य होते हैं । जिनमें बनने में जहाँ एक और देश काल परिस्थिति व जाति की पौराणिक कथाओं एव धार्मिक विश्वासों का प्रभाव होता है । वहीं दूसरी ओर देश की भौतिक अवस्था वैज्ञानिक स्थिति आदि को भी ध्यान में रखा जाता है । मध्ययुगीन साहित्यकारों में तुलसीदास जी अपना एक निसिच्त स्थान बनाए हुए हैं। उनमें राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से उपर उठाकर भारतीय वर्ण व्यवस्था तथा जाति भेद के मिले जुले स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया था । उन्होने वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार करते हुए भी उसमें व्याप्त त्रुटियों का बहिष्कार किया था ।

इसमें रामचरित मानस में मर्यादा पुरषोत्तम राम के जीवन चरित्र चित्रण के द्वारा उस समय की राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को स्पष्ट एवं सटीक चित्रण किया है । सभी षोडश संस्कारों को इसी के अन्तर्गत लिया है ।

जन्म चूड़ामणि, बाललीला, यज्ञोपवीत, गुरूदीक्षा, शिक्षा, गुरूकुल व्यवस्था गुरू शिष्य सम्बन्ध, वैवाहिक व्यवस्था समाज की रीतियों नैतिक मूल्य सांस्कृतिक चेतना मरण पर्व आदि का समावेश किया गया है । सम्बन्धों के बारे में तुलसीदास जी ने आपसी सम्बन्धों

को एक नवीन स्वरूप में प्रस्तुत किया है जिसका स्पष्टीकरण इस अध्याय में किया गया है । आपसी सम्बन्धों को मर्यादाओं में बांधा हुआ है व इसे प्रदर्शित किया है । रामचरितमानस का हर व्यक्ति अपने सम्बन्धों के निर्वाह के प्रति पूर्णतः जागरूक एवं समर्पित है तुलसीदास जी ने नर में नारायण को आरोपति किया है । इसी लिए समयोचित हावभावों का परिमार्जन किया है ।

इसी अध्याय में भाई-भाई, पिता-पुत्र, माता-पुत्र, पिता-पुत्री, पति-पत्नी, राजा एव प्रजा गुरू-शिष्य सभी का वर्णन है ।

चतुर्थ अध्याय में विद्रोह के नैतिक मूल्यों की स्थापना हेतु युद्ध, युद्धों के प्रकार - अनेक स्तर की शत्रुताएं वाली कैकई शूर्पनखा रावण, कुम्भकरण आदि का चित्रण है ।

तुलसीदास जी ने हर पात्र के अनुरूप उसका चरित्र चित्रण किया है । जहाँ शूर्पनखा के प्रति रावण का प्रेम देखा जाय तो रावण एक भाई के रूप में पूर्णतः समर्पित दिखा है । कैकई पुत्र मोह में अपने कर्तव्यों से विमूख हो चुकी है । बाली अपने क्रोधं में अपने विवेक को भी भूल चुका है । वही राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदि चारों भाईयों के चरित्र चित्रण में तुलसीदास जी अपनी मर्यादा कब्ही भी नही चुके हैं । इसके अलावा राम सीता वनवास उसके पश्चात् सीता की अग्नि परीक्षा आदि का समावेश भी इसी अध्याय में किया गया है ।

वहीं पर श्री राम की पति के रूप में मर्यादाएँ भी बतलाई गई हैं । प्रजा पालक के रूप में श्री राम अपने स्वयं के सुखों का किस हद तक त्याग करते हैं वह भी इसी अध्याय में है । राजा राम के रूप में प्रजा व राजा के आपसी सम्बन्धों की व्याख्या की गई है । पाँचवें अध्याय मं अयोध्या की राजवंश परम्परा से श्री राम का मन दुःख राज्याधिकार के नियम, धनुष भंग की अपेक्षाएँ जनकपुरी अयोध्या, तथा लंका की राज्य व्यवस्थाओं का तुलनात्मक

अध्ययन एवं समानता एवं असमानताओं का विवेचन किया गया है । लंका की राज्य व्यवस्था में विभिन्न व्यक्तियों का महत्व उनकी योग्यता उनकी कार्य पद्धति उनके दायित्वों को स्पष्ट किया गया है । अलग अलग व्यक्ति अलग अलग स्थानों पर अलग अलग प्रतिक्रियाओं में अपने विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं ।

इसी अध्यायमें युद्ध की आवश्यकता क्यों होती है अलग-अलग प्रकार के युद्धों में भिन्नता सुग्रीव का वानर राज और उसकी सैन्य व्यवस्था, आक्रमण के प्रकारों के द्वारा विभिन्न राजाओं के आक्रमण करने के ढ़ग एवं उनका विवेचनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण है ।

छटे अध्याय में राजनीति एवं धर्म का सम्बन्ध, राजनीति तथा तत्कालीन समाज का स्वरूप राजनीति संस्कृति का समावेश किया गया है ।

इस अध्याय में राजनीति के स्वरूप को स्पष्ट करने का प3यास किया गया है । राजनीति अलग अलग देशों में अलग अलग स्वरूप धारण करती है विभिन्न राजाओं ने अपनी विभिन्न मनोदशाओं में राजनीति में परिवर्तन किये हैं । एक ही काल में लंका व अयोध्या के राजनीतिज्ञों की विचारधाराओं में असमानता होती है । राजनीति से धर्म भी स्पष्ट एवं अस्पष्ट दोनो ही प्रकार से प्रभावित होता है । धर्म परायण प्रजा कठोर शासक के शासन काल में अधिक दुःखी होती है । क्योंकि उस काल में जब शासक मुस्लिम थे हिन्दू प्रजा को अपनी धार्मिक स्वतंत्रता छिनती दिखाई देती थी । धार्मिक शक्ति यूं देखा जाय तो राजनीतिक शक्तियों से कम महत्वपूर्ण नही होती है दोनों का अपना एक निशिच्त स्वरूप होता है परन्तु परिस्थितियों के अनुसार दोनों में परिवर्तन होता रहता है । इसी बात को इस अध्याय में स्पष्ट करने का प्रयास किया है । इसके अलावा संस्कृति के बदलते स्वरूप को चित्रित किया है ।

संस्कृति एवं समाज दोनो ही पर राजनीति व धर्म से प्रभावित

हुए बिना नहीं रह सकते इसका परिचय इस अध्याय में दिया गया है ।

सातवे अध्याय में ''रामचरित मानस एवं उनकी प्रासंगिकता राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश'' को स्पष्ट करने का प3यास किया गया है ।

गोस्वामी तुलसीदास जी सर्वप्रतम रामायण के रचना करने वाले नही थे उनसे पहले अनेको रामायण एवं राम काव्यों की रचना अन्य कवि एवं ऋषिगण कर चुके थे । परन्तु अन्य रामायणों अथवा रामकाव्यों को प्रसंगानुसार कभी कभी ही याद किया जाता है परन्तु तुलसीदास जी की रामचरित मानस को असंख्य लोग आज भी नियमित पठनपाठन के योग्य समझते हैं । क्योंकि जिस काल में उसकी रचना की गई थी उस काल की सत्य प्रतिलिपि के रूप में रामायण में चित्रित कलिकाल के वर्णन को देखा जा सकता है । उस समय तक की सारी राम कथाओं को जनमानस नही पढ़ सकता था क्योंकि ये देववाणी अथवा संस्कृत में थी जो प्रबद्ध या विद्वतजन थे वे ही उसका पठन पाठन कर सकते थे ।

तुलसीदास जी ने सर्वप्रथम जनमानस की भाषा में जनमानस के लिए रामकथा को आधार बना कर प्रस्तुत किया है । उन्होंने रामचरितमानस के रूप में समग्र संसार को एक आदर्श ग्रन्थ बना दिया है जिसमे श्री राम के रूप में एक आदर्श व्यक्ति का चित्रण किया जिसके सम्बन्ध से लोग अपनी जीवन नैया को पार लगा सके । आज 4 सौ वर्षो के बाद भी वह उतनी ही लोकप्रिय है जितनी उसके रचनाकाल में थी । इसमें देश काल एवं परिस्थितियों का सम्पूर्ण परिचय प्राप्त होता है । इसके पठन पाठन से व्यक्ति अपनी जीवन यात्रा को एक सुनिश्चित मार्ग प्रदान कर सकता है ।

आठवें अध्याय में समग्र सामग्री का संचित रूप देख भाल कर उसका मूल्यांकन किया गया है ।

इसके अलावा उन सभी श्रद्धेयजनों की आभारी हूँ जिन्होने मुझे इस शोध रचना करने में सहयोग दिया है ।

प्रो. मदनगोपाल जी गुप्ता, प्रो. डॉ. प्रतापनारायण जी झा, प्रो. डॉ. पारूकान्त जी देसाई, डॉ. विष्णु जी विराट, कमिश्नर श्री सी.एल. मीणा सा, एवं अन्य गुरूजन एवं मेरे पतिदेव डॉ. राजेन्द्र कुमार जी नागदा, जिनके सहयोग और प्रेरणा से यह कठिन कार्य को सम्पन्न किया जा सका ।

चि. विनय, श्वेता एवं स्वाति जिन्होंने मेरी प्रबल इच्छा को पूर्ण करने में पूर्णसहयोग दिया । बिना बच्चों के सहयोग के इतना बड़ा कार्य असम्भव था । स्व. पूज्य पिताजी केशवचन्द्र जी जोशी को दिया गया वचन ही इसकी मूल प्रेरणा रही है । यह शोध ग्रन्थ उन्ही को समर्पित कर रही हूँ ।

इन्दुबाला नागदा

"रामचरित मानस में राजतंत्रीय सांस्कृतिक समन्वय"

1. पृष्ठभूमि -

   (i) रामायण काव्य की परम्परा
   (ii) साहित्य एवं राजनीति
   (iii) साहित्य एवं संस्कृति
   (iv) मध्यकालीन भक्ति परक साहित्य और राजनीति एवं संस्कृति
   (v) रामाश्रयी साहित्य व राजनीति तथा संस्कृति

2. तात्कालीन सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्थितियाँ और साहित्यिक चेतना :

3. रामचरितमानस का सांस्कृतिक परिवेश तथा स्थापित मूल्य + धर्म + समाज + राजनीति + संस्कृति -

   जन्म + चूड़ामणि, बाललीला, यज्ञोपवीत, गुरू दीक्षा, शिक्षा, गुरू शिष्य सम्बन्ध, गुरूकुल व्यवस्था, वैवाहिक व्यवस्था समाज की रीतियाँ, नैतिक मूल्य सांस्कृतिक चेतना मरण पर्व ।

   सम्बन्ध भाई-भाई, माँ-बेटा, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, राजा-प्रजा, गुरू-शिष्य ।

4. विद्रोह नैतिक मूल्यों की स्थापना हेतु युद्ध, युद्ध के प्रकार अनेक स्तर की शत्रुताएं बाली, कैकई, शूर्पनखा, रावण, कुम्भकरण, अक्षय कुमार आदि ।

   रामसीता का वनवास एवं अग्नि परीक्षा, पति की सामाजिक एवं राजनीतिक मर्यादाएँ प्रजा और राजा का दायित्व एवं अधिकार।

5. राजनीति में :-

(i) अयोध्या की राजवंश परम्परा
(ii) राज्याधिकार के नियम
(iii) धनुष भंग की अपेक्षा
(iv) जनकपुरी अयोध्या तथा लंका की राज्य व्यवस्थाएँ
(v) लंका की राज्य व्यवस्था में सचिव पार्षद प्रतिनिधि आदि अधिकारियों के दायित्व
(vi) युद्ध की अनिवार्यताएँ और विभिन्न युद्ध
(vii) सुग्रीव का वानर राज्य ओर उसकी सेन्य व्यवस्था
(viii) आक्रमण के प्रकार

6. राजनीति तथा धर्म :

(i) राजनीति तथा तात्कालीन समाज
(ii) राजनीति तथा परिवर्तित संस्कृति

7. रामचरित मानस और उसकी प्रासंगिकता राजनीति एवं सांस्कृतिक परिवेश में

8. उपसंहार एवं मूल्यांकन